मन

श्री महाराज जी ने एक बार मन (चित्त) पर वेद आधारित उपदेश दिया। इस उपदेश के माध्यम से श्री महाराज जी ने यह संदेश दिया कि मनुष्य में मन ही है जो उसे अच्छे और गलत कार्य करने की प्रेरणा देता है। इसीलिये महाराज जी ने इस बात पर बल दिया कि हर मनुष्य को अपने मन को शुभ संकल्पों वाला बनाना चाहिये। और भी बहुत कुछ है इस उपदेश में, आइये जानते हैं।

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति। दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा मन, जो जाग्रत और स्वप्न दोनों ही अवस्थाओं में अत्यधिक वेग से दूर-दूर तक जाता है और उसी प्रकार से लौट भी आता है तथा जो ज्योतियों की भी ज्योति है, शिव संकल्प मय हो।

ॐ येनकर्माण्यपसो मनीषिणोयज्ञे कृण्वंतिविदथेषु धीराः।
यत्पूर्वं यक्षमंतः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि मेरा वह मन, जो सारी प्रजा में ओत-प्रोत है, जिस मन का उपयोग बुद्धिमान, विचारवान, आश्चर्यवान और पूजनीय मनुष्य शुभकार्य करने में तथा पाप से लड़ने में करते हैं, शिव संकल्पमय हो।

ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतोधृतिश्चयज्ज्योतिरंतरमृतं प्रजासु।
यस्मान ऋते किंचनकर्मक्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि मेरा वह मन, जो चित्त और धैर्य रूप है तथा सर्व प्राणियों का अंतरात्मा स्वरूप अविनाशी ज्योति है, जिसके बिना कुछ भी कर्म असंभव है, शिव संकल्पमय हो।

ॐ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि मेरा वह मन, जो अति शीघ्र ही भूत, भविष्य एवं वर्तमान को जान लेता है और जिसके द्वारा सप्तहोता रूपी इंद्रियों का यज्ञ होता है, शिव संकल्पमय हो जाये।

ॐ यस्मिन्नृचःसामयजुंपियस्मिन्प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः।
यस्मिश्चित्तग्वंसर्वमोतंप्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि मेरा वह मन जिसमें ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्वेद उसी प्रकार रखे हैं जैसे चक्र की नाभि में उसकी कमानें संयुक्त रूप से रहती हैं और जिस मन में प्रजा का ज्ञान तथा तत्वज्ञान ओत-प्रोत है, शिव संकल्पमय हो जाये।

ॐ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा वह मन, जो सभी प्राणियों को ठीक उसी प्रकार से प्रेरित करता है जिस प्रकार से निपुण सारथि घोड़ों को चलाता है, तथा जो हृदय में स्थित रहते हुए अत्यधिक वेगवान एवं जरा, मृत्यु से रहित है, शिव संकल्पमय हो जाये।

अब और विस्तार से मन के विषय में जानें ----

मूल प्रकृति अर्थात महामाया कल्प के अंत में परमात्मा रूपी पति के साथ एकरूप हो जाती है और अपने प्रीतम अर्थात परमात्मा के साथ आनंद भोग करती है। तदोपरांत उसके शुद्ध मन रूपी पुत्र उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् महामाया महादेव जी से प्रार्थना कर मन को शुद्ध संकल्प कराके नौ द्वारों का नगर अर्थात शरीर का निर्माण कराती है। अपने मन रूपी पुत्र को इस नगर अर्थात इस शरीर का राज्य दिलाकर स्वयं आवेगों को प्रवाहित करती रहती है। इन आवेगों से ही मन में प्रबृत्ति और निबृत्ति दो प्रकार की लहरें उत्पन्न होती हैं। यह दो लहरें ही मन के दो प्रकार हैं। पहला प्रबृत्ति में रत मन जिससे मोह, अहंकार और काम आदि रूपी असुर उत्पन्न होते हैं और दूसरा निबृत्ति में रत मन जिससे वैराग्य, विवेक आदि रूपी देवता उत्पन्न होते हैं। इस तरह इस मन से ही सारे संसार की उत्पत्ति होती है। जैसे संकल्प वैसे ही संसार की उत्पत्ति। काम युक्त मन को अशुद्ध तथा काम रहित मन को शुद्ध मन कहा जाता है। इसीलिये कहा गया है ----

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः। बद्धाय विषयासक्तं मुक्त्यैनिर्विषयं स्मृतं।।

अर्थात मन ही मनुष्यों के लिये मुक्ति और बंधन का कारण है। विषयों में आसक्त मन बंधन और अनासक्त मन मुक्ति के लिये माना गया है। इसी कारण शास्त्रों में लिखा है कि मन को विषय-भोग से हटाकर स्वरूप में स्थित करने का यत्न करना चाहिये। वही मनुष्य के लिये परमपद है। इस मन को ही अंतःकरण, चित्त, बुद्धि और अहंकार आदि नामों से भी जाना जाता है। यह भी सच है कि मन स्वप्न तथा जाग्रत दोनों ही अवस्थाओं में स्पंदन करता है। इसीलिये कहा है कि ----

यथा स्वप्न मयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च। तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च।।

जिस प्रकार स्वप्न के जीव स्वप्न में ही उत्पन्न होते हैं और स्वप्न ही में समाप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार जाग्रत के जीव हैं भी और नहीं भी। अर्थात माया मात्र से ही हैं। और भी कहा है ----

स्वप्न माये यथा दृष्टे गंधर्व नगरं यथा। तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदांतेषु विचक्षणै।।

जिस प्रकार स्वप्न में माया से गंधर्व नगर दृष्टि-गोचर होता है, उसी प्रकार यह सारा संसार भी मायावश दृष्टि-गोचर हो रहा है। ऐसा ही वेदों में बताया है। इसी कारण कहा गया है कि ----

न निरोधो नचोत्पत्ति बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वैमुक्तो इत्येषा परमार्थता।।

न तो संसार की उत्पत्ति होती है न ही प्रलय होती है। न कोई मुक्त है न कोई बद्ध है और न ही कोई मुक्ति का साधन ही है। बस यही तत्व ज्ञान है।

ऊपर लिखी बातों से सिद्ध होता है कि मनुष्य का मन ही सर्व प्रपंच का रचने वाला है। जिसका मन शुद्ध संकल्पों वाला हो जाता है, उसे सब कुछ अच्छा प्रतीत होने लगता है। जिसका मन वासनाओं के कारण अशुद्ध होता है, उसे सब कुछ मलीन प्रतीत होता है। सब कुछ मन से ही प्रतीत होता है। जिस का जैसा संकल्प होता है वैसा ही संसार दृष्टि-गोचर होता है।

एक बार याज्ञवल्क जी ने जनक जी को एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि जीव का मन ही उसका आत्मा है तथा यही मन दूसरे जन्म धारण करता हुआ जिस-जिस शरीर के साथ मिलता है, उन्हीं विभिन्न शरीरों के धर्मों को धारण करके अपने कर्मों का फल भोगता है।

इसी कारण सभी ने इसी बात पर बल दिया है कि अपने मन को भगवत भजन में, दूसरों के हित में तथा साधना में लगाना चाहिये। इसी से मन शांत होता है और मुक्त हो जाता है।

बोलो प्रेम से सच्चिदानंद सनातन ब्रह्म की जय